स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर । भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बँधनकर ॥

वर्ष १९ } गौराब्द ४८८, मास–मधुसूदन ८, वार–वासुदेव रविवार, ३१ चैत्र, सम्वत् २०३१, १४ अप्रेल १९७४ { संख्या ११

अप्रेल १९७४

श्रीब्रह्माकृतं श्रीश्रीगर्भोदशायी–स्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत ३।९।१८-२५)

यस्माद्बिभेम्यहमपि द्विपरार्द्धधिष्ण्यमध्यासितः सकललोकनमस्कृतं यत् ।
तेपे तपो बहुसवोऽवरुरुत्समानस्तस्मै नमो भगवतेऽधिगमाय तुभ्यम् ॥१८॥

हे भगवन् ! सभी लोकोंके पूज्य दो परार्द्धकालस्थायी स्थानमें आरूढ़ होकर भी मैं कालसे भय करता हूँ एवं आपको पानेके लिए बहुत प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करते हुए तपस्या करता हूँ । उन यज्ञादि कर्मोंके अधिष्ठाता स्वरूप आपको नमस्कार करता हूँ ॥१८॥

तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनिष्वात्मेच्छयात्मकृतसेतुपरीप्सया यः ।
रेमे निरस्तविषयोऽप्यवरुद्धदेहस्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥१९॥

हे भगवन् ! आपने स्वेच्छासे तिर्यक् (पशु-पक्षी आदि), देव, नरादि जीवयोनियोंमें अपनी नित्य मूर्त्ति प्रकट कर एवं आत्मारामता हेतु जीवगोचर प्राकृत विषय सुखसे निरस्त होकर भी अपनेद्वारा की गई धर्म-मर्यादाका पालन करनेके लिए क्रीड़ा किया करते हैं। अतएव आपमें (उपाधि-धर्मका संस्पर्श न होनेके कारण) आप ही पुरुषोत्तम हैं। षड्ऐश्वर्यशाली भगवान् आपको नमस्कार करता हूँ ॥१९॥

योऽविद्ययानुपहतोऽपि दशार्द्धवृत्त्या निद्रामुवाह जठरीकृतलोकयात्रः ।
अन्तर्जलेऽहिकशिपुस्पर्शानुकूलां भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं विवृन्वन् ॥२०॥

हे प्रभो ! पांच प्रकारकी वृत्तियुक्त निद्रादिके कारणभूत अविद्याद्वारा आक्रान्त न होकर भी तीनों लोकोंके संस्थान रूप आपके उदरमें अवस्थित मनुष्योंकी सुख-वृद्धिके लिए भयानक तरङ्गोंसे पूर्ण अन्तर्जलमें अनन्त नाग शय्यामें शयन करते हुए उनके स्पर्शसे सुख प्राप्त कर आपने निद्रा स्वीकार की थी ॥२०॥

यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्य लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ।
तस्मै नमस्ते उदरस्थभवाय निद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय ॥२१॥

हे स्तवनीय पुरुष ! आपके ही अनुग्रहसे आपके नाभिकमलसे (सृष्टि आदिके द्वारा) तीनों लोकोंका उपकार करनेवाला मैं (ब्रह्मा) उत्पन्न हुआ हूँ। प्रलयकालमें यह संसार प्रपञ्च जब आपके उदरमें रहता है, तब आप निद्रित रहते हैं, योगनिद्राका अवसान (अन्त) हो जानेके कारण अभी आपके नयनकमल विकसित हुए हैं। आपको नमस्कार करता हूँ ॥२१॥

सोऽयं समस्तजगतां सुहृदेक आत्मा सत्त्वेन यन्मृडयते भगवान् भगेन ।
तेनैव मे दृशमनस्पृशदप्रमेयो दद्यात् प्रभो भजतां मे पुरुषार्थमीशः ॥२२॥

वे भगवान् आप ही सारे जगत्के एकमात्र सुहृद् (परम बन्धु) एवं आत्मा हैं। आप ज्ञान एवं ऐश्वर्यद्वारा विश्वको सुख प्रदान करते हैं। आप भक्तवत्सल हैं (मैं भी आपका प्रणत भक्त हूँ), आप मुझे ऐसा प्रकृष्ट ज्ञान दें जिससे मैं पूर्व-पूर्व कल्पोंकी तरह इस विश्वकी सृष्टि करनेमें समर्थ हो सकूँ ॥२२॥

एष प्रसन्नवरदो रमयात्मशक्त्या यदयत् करिष्यति गृहीतगुणावतारः ।
तस्मिन् स्वविक्रममिदं सृजतोऽपि चेतो युङ्क्ते कर्मशमलं च यथा विजह्याम् ॥२३॥

(इस प्रकार ब्रह्माजीने स्तव समाप्त कर मन ही मन स्वयं प्रार्थना करने लगे)—प्रणत व्यक्तियोंके वरदाता, भक्तवात्सल्यादि गुणोंके अवतार वे भगवान अपनी स्वरूप शक्तिके साथ जो जो लीलाएँ करेंगे, मैं उनके ही (उस विष्णुके ही प्रभावयुक्त) इस विश्व सृष्टिका कार्य करनेपर भी वे मेरे चित्तको उसी कार्यमें (लीलादि चिन्तन कार्यमें) नियुक्त

करें, जिससे मैं कर्मासक्ति एवं उसके द्वारा उत्पन्न विषमता आदिका परित्याग करनेमें समर्थ हो सकूँ ॥२३॥

नाभिह्रदादिह सतोऽम्भसि यस्य पुंसो विज्ञानशक्तिरहमासमनन्तशक्तेः ।
रूपं विचित्रमिदमस्य बिवृन्वतो मे मा रीरिषीष्ट निगमस्य गिरां विसर्गः ॥२४॥

जलके मध्यमें शयन किये हुए अनन्त शक्तिमान् पुरुषके नाभिकमल रूपी सरोवरसे महत्तत्त्वाभिमानी मैं उत्पन्न हुआ हूँ एवं उनके विचित्ररूप इस विश्वका विस्तार कर रहा हूँ । निगमके अवयव (अंग) स्वरूप मेरा वाक्योच्चारण कभी लुप्त न हो ॥२४॥

सोऽसावदभ्रकरुणो भगवान् विवृद्ध प्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं विजृंभन् ।
उत्थाय विश्वविजयाय च नो विषादं माध्व्या गिरापनयतात् पुरुषः पुराणः ॥२५॥

वे ही पुरातन पुरुष भगवान् केवल साधारण करुणाविशिष्ट नहीं हैं । वे अत्यन्त प्रेमहास्यसे नयनकमल विकसित कर इस विश्वकी उत्पत्ति एवं मेरे प्रति अनुग्रह करनेके लिए गात्र उत्थान कर सुमधुर वाक्योंद्वारा मेरे विषाद (खेद या दुःख) को सम्यक् प्रकारसे दूर करें ॥२५॥

बंदौं चरन-सरोज तिहारे

बंदौं चरन-सरोज तिहारे ।
सुन्दर स्याम कमल-दल-लोचन, ललित त्रिभङ्गी प्रान-पियारे ॥
जे पद-पदुम सदा सिवके धन, सिंधु सुता उर तें नहीं टारे ।
जे पद-पदुम तात-रिस-त्रासत, मन-बच-क्रम प्रह्लाद सँभारे ॥
जे पद-पदुम परम जल-पावन-सुरसरि दरस कटत अघ भारे ।
जे पद-पदुम परस-रिषि-पतिनि, बलि, मृग, ब्याध, पतित बहु तारे ॥
जे पद-पदुम रमत बृन्दावन अहि-सिर धरि, अगनित रिपु मारे ।
जे पद-पदुम परसि ब्रज-भामिनि सरबस दै, सुत-सदन बिसारे ॥
जे पद-पदुम रमत पांडव-दल, दूत भए, सब काज सँवारे ।
सूरदास तेई पदपंकज त्रिबिध-ताप-दुःख हरन हमारे ॥

परमार्थका विचार

व्यभिचार वृत्ति द्वारा कदापि सेवा नहीं होती। सेवा अव्यभिचारिणी, अहैतुकी, अप्रतिहता एवं आत्मवृत्ति है। श्रीगुरुपादपद्म की निष्कपट सेवाके बिना वेद-वेदान्त आदि शास्त्रों का तात्पर्य जाना नहीं जा सकता। भगवद्भक्तको छोड़कर और कोई गुरु ही नहीं हो सकते। यह अहङ्कार या अभिमानपूर्ण बात नहीं है, बल्कि वास्तव-सत्य है—

महाकुलप्रसूतोऽपि सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
सहस्रशाखाध्यायी च न गुरुः स्यादवैष्णवः॥

अर्थात् जो व्यक्ति महान् कुलमें उत्पन्न है, सभी प्रकारके यज्ञोंमें दीक्षित है, वेदोंकी हजारों शाखामें पारंगत है, किन्तु यदि वह अवैष्णव या अभक्त है, तो कदापि वह गुरु नहीं हो सकता।

पूर्वकालमें दक्षिण भारतमें कांचीपुर नामक एक नगर था। वहाँ यादवप्रकाश नामक एक विशेष प्रसिद्ध अध्यापक वास करते थे। उस समय ऐसी जनश्रुति थी कि उस देश में उनके समान—और कोई दूसरा अध्यापक नहीं है। श्रील लक्ष्मणदेशिक (श्रील रामानुजाचार्य) उनके निकट विद्या शिक्षा करनेके लिए गये थे एवं उस गुरुके पास रहकर ऐकान्त रूपसे शास्त्रानुशीलन एवं अकृत्रिम व्यवहारके द्वारा थोड़े ही समयमें यादवप्रकाश की स्नेह-दृष्टिके पात्र होनेमें समर्थ हुए थे। एक दिन यादवप्रकाशने "तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी"—छान्दोग्य उपनिषद्के इस श्रुतिकी श्रीशंकराचार्य मतानुसारिणी व्याख्या "आस्यते उपविश्यते अनेन इति आसः पश्चाद्भागः कपेः आसः कप्यास" ऐसी व्याख्या कर पुण्डरीकाक्ष (कमलनयन) भगवान्‌की दोनों आँखें बानरके पश्चाद्भाग (नितम्ब या चूतड़) की तरह रक्तवर्ण हैं, ऐसा अर्थ किया। ऐसा अर्थ सुनकर श्रील रामानुज-जीने हृदयमें तीव्र आघात अनुभव किया। उस समय वे यादवप्रकाशकी शारीरिक सेवा में लगे हुए थे। भगवान्‌की श्रीमूर्त्तिकी निन्दा सुनकर वे अत्यन्त मर्माहत हुए। उनकी दोनों आँखोंसे गरम आँसुओंकी धारा बह चली एवं यादवप्रकाशके पीठपर दो एक बूँदें गिर पड़ीं। यह देखकर यादवप्रकाश हठात् चमकित हुए एवं श्रील रामानुजजीसे इसका कारण पूछा। तब उन्होंने कहा कि 'कप्यासं' श्रुतिका सुन्दर अर्थके वर्त्तमान रहते रहते ऐसे जघन्य अपराधजनक अर्थ करनेकी क्या आवश्यकता है? जो परमाराध्य परमेश्वर हैं, उनकी अप्राकृत आँखोंकी बानरके जघन्य प्रदेश के साथ तुलना करना क्या अत्यन्त अपराधका कार्य नहीं है? उनकी यह बात सुनकर यादवप्रकाश अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहने लगे—"क्या इतनी बड़ी आस्पर्द्धा (प्रतियोगिता) कर रहे हो? साधारण बालक होकर आचार्य शंकर की व्याख्यामें दोष दर्शन करते हो! आचार्य

शंकरकी व्याख्याकी अपेक्षा और श्रुतिका श्रेष्ठतम अर्थ क्या हो सकता है ?" तब श्रील रामानुजाचार्य विनय-नम्र वचनोंसे कहने लगे—"हाँ, आचार्य शंकरजीने अदेव या आसुरिक प्रकृतिवाले व्यक्तियोंको विमोहित करनेके लिए जो व्याख्या की है, उसको छोड़ कर श्रुतियोंकी दिव्य सूरियोंद्वारा प्रकटित आनन्दवर्द्धिणी व्याख्या है। मैं कह रहा हूँ, आप कृपा कर श्रवण करें।" तब श्रीरामानुजजीने 'कप्यासं' श्रुतिकी ऐसी व्याख्या की—"कं जलं पिबति इति कपिः नालः तस्मिन् आस्ते तिष्ठति इति कप्यासं नालस्थितमित्यर्थः" अर्थात् उन (पुरुषोत्तम भगवान) की दोनों आँखें नालमें वर्त्तमान अम्लान- (प्रफुल्लित) कमलकी तरह लाल आभायुक्त है। उस समय यादवप्रकाश यह व्याख्या सुनकर अत्यन्त विस्मित हो गये एवं अपने शिष्यके निकट पराजित होकर गुप्त रूपसे श्रील रामानुजको मारनेका षड्यन्त्र करने लगे।

निर्भेद ज्ञानी-गुरु, कर्मी-गुरु, योगी-गुरु, व्रती-गुरु, तपस्वी गुरु, ऐन्द्रजालिक (जादूगर) गुरु, कपट-गुरु कदापि 'गुरु' पदवाच्य नहीं हो सकते। ये सभी ही लघु हैं। वे जीवोंके उपकारक नहीं, बल्कि आत्महिंसक एवं परहिंसक हैं। किन्तु एकमात्र महाभागवत वैष्णव-गुरु ही जीवोंके प्रति अहैतुकी दया करनेवाले हैं, परदुःख-दुःखी हैं। इसलिए हमारे पूर्वगुरु श्रील रघुनाथदास गोस्वामी प्रभु ने उन परदुःख-दुःखी सम्बन्ध ज्ञानके दाता, श्रील सनातन गोस्वामीपादका आश्रय ग्रहण करनेकी शिक्षा दी है—

वैराग्ययुग् भक्तिरसं प्रयत्नै-
रपाययन्मामनमीप्सुमन्दम् ।
कृपाम्बुधिर्यः परदुःखदुःखी
सनातनं तं प्रभुमाश्रयामि ॥

अर्थात् जो सर्वदा परदुःखमें कातर एवं दयाके समुद्र हैं, मेरी इच्छा न रहनेपर भी जिन्होंने यत्नके साथ मुझे वैराग्यसे युक्त भक्तिरस पान कराया है, ऐसे सम्बन्धज्ञानदाता श्रील सनातन प्रभुका आश्रय लेता हूँ।

ज्ञान-प्राप्तिका आधार केवल-चेतन है या मिश्रित-चेतन है ? कैवल्यं कप्रयोजनम् है, कि और कुछ है ? ये सभी बातें चिन्मात्रवादसे उत्पन्न हैं या अचिन्मात्रवादसे उत्पन्न हैं या नित्यानन्दमय चिद्विलाससे उत्पन्न हैं, सबसे पहले यह स्थिर होना आवश्यक है। जड़के साथ एकीभूत हो जाना ही अचिन्मात्रवाद है एवं चेतनमें एकीभूत होनेका नाम चिन्मात्रवाद है। नित्य आनन्दमय चेतनराज्यमें नित्य भगवत्सेवा करनेका नाम—परम निरपेक्ष होकर निर्विवाद से चिद्विलासमें अवस्थान है।

श्रीमद्भागवतमें कही गई मुक्ति विपुटी नाशमात्र नहीं है, वह स्वरूपमें अवस्थान है—"मुक्तिर्हित्वान्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः।" स्वरूपमें अवस्थित होनेपर अचेतनता स्पर्श नहीं कर सकती एवं चेतन की क्रियारूप सेवा पूर्णरूपसे प्रकाशित होती है। जिनके चेतनमें जो नित्यसिद्ध सेवा है, वही अप्रतिहता सेवा तब विकसित हो जाती है।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

भगवान श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है कि मेरी जो व्यक्ति जिस भावसे पूजा करता है मैं भी उसकी उसी भावसे पूजा करता हूँ। कान्तरसमें सभी अंगोंसे सेवा होती है। अतएव कृष्ण भी वहाँ उनके सभी अंगोंको दे देते हैं—अपनेको देकर भी ऋणी समझते हैं। यहाँ 'मां' शब्दको देखना होगा। 'मां' शब्द साक्षात्‌रूपसे कृष्णको ही लक्ष्य कर रहा है। कृष्ण कह रहे हैं—मेरी जो पाँच प्रकारसे पूजा करते हैं, उनमें तटस्थगत विचारसे परस्पर प्रपत्तिकी तारतम्यता देखी जाती है। कान्तरसमें प्रपत्तिकी पराकाष्ठा है। 'मेरी' यदि न हो, मेरी छाया या बहिरंगा मायाकी होनेपर मुझमें प्रपत्ति नहीं हुई। दहीको यदि दूध कहा जाए, तो नहीं होगा। दहीका मूल दूध होनेपर भी विकृत दूध कदापि दही नहीं है। कोई विष्णुकी विकृत कल्पना दर्शन कर उस विकृत दर्शनके शरणागत होनेपर काम नहीं चलेगा। विष्णुका विकार नहीं होता। किन्तु जो व्यक्ति देख रहे हैं, उनके दर्शनमें यदि विकारसे उत्पन्न कार्य हो, तो विष्णु दर्शन नहीं हुआ, यही जानना चाहिए।

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥

कृष्णको छोड़कर दूसरी वस्तुका दर्शन अवैध दर्शन है। यह अवैध दर्शन ही हमारे सभी अमंगल एवं भेदबुद्धिका मूल है। ऐसे अवैध दर्शनकी अवस्था दूर हो जानेपर यथार्थ रूपसे ही कृष्णको देखा जा सकता है। वे बारह रसोंके आश्रय हैं। कृष्ण ही अखिल रसामृत-सिन्धु हैं। पाँच मुख्य रस एवं उनके परिपोषक सात गौणरस कृष्णमें ही पूर्णरूपमें वर्त्तमान हैं।

अतएव श्रीमद्भागवतका यह श्लोक है—

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः
स्त्रीणां स्मरो मूर्त्तिमान्,
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षिति-
भुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराड्विदुषां
तत्त्वं परं योगिनां,
वृष्णीनां परदेवतेति
विदितो रंगं गतः साग्रजः ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने परीक्षित् महाराजसे कहा—अखिल रस-कदम्ब स्वरूप श्रीकृष्णके कुछ रसोंका परिचय प्रदान कर रहा हूँ, आप श्रवण करें। जब अपने बड़े भाई बलदेवजीके साथ श्रीकृष्ण कंसके रंगशालामें उपस्थित हुए, तब जिनका जो रस था, वे उसी रससे कृष्णको देखने लगे। वीर-रसप्रिय मल्लोंने देखा कि कृष्ण उनके निकट साक्षात् वज्ररूपसे उदित हुए हैं एवं मधुर रसप्रिय स्त्रियोंने उनको साक्षात् मूर्त्तिमान् कामदेव रूपसे देखा। नरगण जगत्‌के एकमात्र नरपति एवं सख्य-वात्सल्यप्रिय गोप लोगोंने उन्हें स्वजन रूपसे देखा। भयार्त्त असत् राजाओंने उन्हें शासन-कर्त्ता रूपसे देखा। पिता-माताने उन्हें सुन्दर शिशु रूपसे दर्शन किया। भोजपति कंसने साक्षात् मृत्यु रूपसे देखा। जड़बुद्धि व्यक्ति लोगोंने विराट् रूपसे, शान्तरसके परम योगी लोगोंने

परतत्त्व रूपसे एवं वृष्णिवंशीय पुरुषोंने परदेवता रूपसे उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन किया था।

दूसरी बातोंमें घूम-फिर कर सभी ही कृष्णसेवा पायेंगे। क्योंकि कृष्ण ही एकमात्र आकर्षक हैं और हम आकर्षणीय हैं। उन आकर्षक और हम आकर्षणीयके बीचमें जो तात्कालिक आवरण आ पड़ा है, उस आवरण के दूर हो जानेपर ही आकर्षकके आकर्षणके साथ हमारा साक्षात् सम्बन्ध होगा।

अचित्के साथ जो सम्बन्ध है, उसीका नाम ही दुःसंग है। देह एवं मनके द्वारा ही वह दुःसंग होता है। इस दुःसंगका परित्याग करनेपर हमारा आकर्षणीय स्वरूप आकर्षक कृष्णके साक्षात् आकर्षणके साथ मिलित होता है। कृष्ण केवलचेतनका आकर्षण करते हैं। केवलचेतनसे कैवल्य या विशुद्ध भावको ग्रहण नहीं करनेसे चेतन-राज्यके सभी द्वारपाल प्रवेश निषेध करेंगे। बाहरी जगतके प्रमाणसे सूक्ष्म आकारसे जो सभी वस्तुएँ ग्रहणकी जाती हैं, उन सभी वस्तुओंका आकर्षण भी औपाधिक है। कृष्ण-ज्ञानके बिना ब्रह्म-ज्ञान, परमात्म-ज्ञान, या प्राकृतज्ञानसे जो प्रेम ग्रहण किया जाता है, वह ज्ञानका भेदविशेष है। निर्विशेषवादीकी धारणामें जो ब्रह्म है, उसमें ब्रह्म-दर्शन नामक कोई वस्तु नहीं हो सकती। योगियोंके विचार का परमात्म-दर्शन या ईश्वर-सायुज्य ब्रह्म-सायुज्यसे भी अधिकतर अपराधकी बात है। ब्रह्म-सायुज्यमें जीवका अस्तित्व स्वीकृत नहीं होता। ईश्वर-सायुज्य में जीवात्माका अस्तित्व स्वीकारकर जीवात्मा का परमात्माके आसनपर अधिकार करानेकी चेष्टा और भी अधिकतर परमेश्वर-द्रोहिता है। इसलिए श्रीमन्चैतन्य महाप्रभुने कहा है—"ब्रह्म-सायुज्य हइते ईश्वर-सायुज्य धिक्कार।"

ये सभी बातें आलोचना करना हो, तो सर्वप्रथम हमारे लिए ज्ञानके आधारकी आवश्यकता है। इन सभी आलोचनाका आधार क्या मिश्रित चेतन है या अविमिश्र चेतन है? यह क्या मनुष्य प्रणीत आधारसे उत्पन्न है या भगवत् प्रणीत आधार है? मनुष्य प्रणीत आधार होनेपर भ्रम-प्रमादादि रहेंगे।

'मैं' क्या वस्तु हूँ? पिता-मातासे जो शरीर प्राप्त किया है। वही क्या मैं हूँ? या मन-बुद्धि अहंकारद्वारा जो संकल्प-विकल्प भग्न-निर्माण आदि करता है, वे वस्तुएँ मैं हूँ? यहाँ प्रचुर बातें हैं। हमारे जीवनके अत्यन्त आरम्भकालसे ये सभी बातें सुननेका अवसर मिला था। ५० वर्षोंसे ये ही बातें आलोचना कर रहा हूँ। प्रचुर परिमाणमें सब समय आलोचना करने का समय मैंने पाया—२४ घन्टे इन सभी बातों की आलोचना की है, सोते समयमें भी आलोचना की है। जाग्रत अवस्थामें भी इन सभी बातोंकी आलोचना मैंने की है। यह विषय आलोचना करते करते ही मेरे शरीरका भी पतन हो जाएगा।

'मैं' विचारके अन्तर-प्रकोष्ठमें घुसनेके पहले द्वारमें दो द्वारपाल खड़े हैं, वे 'मैं' के पास जाने नहीं देते। कृष्णके अङ्गका गन्ध क्यों नहीं पा रहा हूँ? कृष्णके पञ्चम स्तरकी मुरली-ध्वनि कानोंमें क्यों नहीं सुनाई देती?

रास्तेकी गड़बड़ी, जगतका कर्मकोलाहल कानों में क्यों घुस रहा है ? वर्त्तमान समयमें आत्मा के सोये रहनेके दलाल होनेके कारण—मैनेजर या प्रबन्धक अधिकारी होनेके कारण मन बीचमें आकर बाधा देता है। मनोधर्मजीवी मुझे या आत्माको धोखा देनेवाला मन कुपरामर्श प्रदान कर प्रेयः पथमें नियुक्त करता है। मनका स्वामी, देहका स्वामी आत्मा है। वाक् foreman (प्रधान कर्मचारी) है, जिस प्रकार jury (पञ्च) का प्रधान कर्मचारी होता है। चेतनका वाक् एक प्रकारसे है एवं अचेतनका वाक् दूसरे प्रकारका है। मन अनात्मा है, इसका प्रमाण यहाँ मिलता है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्नाः प्रकृतिरष्टधा॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥
(गीता ७।४-५)

पराप्रकृति रूप जीव तटस्थ धर्मयुक्त है। जन्म स्थिति-भंगके साथ उसका सम्बन्ध है। परा प्रकृति, जिसे अप्राकृत क्रिया कहा जाता है, उसमें भी जीवका स्थान है। अक्षर पराविद्याके अन्तर्गत है एवं क्षर अपरा विद्या के अन्तर्गत है। पर विद्याका आश्रय सुमति है। वेदोंमें 'सुमति' की बात है—"ॐ आहस्य जानन्तो नाम चिद्विक्तन् महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॐ तत्सत्।" अर्थात् हे विष्णो! तुम्हारा नाम चित् स्वरूप है। अतएव वह स्वप्रकाश रूप है। इसलिए इस नामका सम्यक् उच्चारणादि माहात्म्य न जानकर भी यदि उसका माहात्म्य केवल थोड़ासा जानकर ही नामोच्चारण करूँ, अर्थात् केवल नामाक्षर मात्रका अभ्यास करूँ, तो ही हम तद्विषयक या तुम्हारा ज्ञान प्राप्त करेंगे। क्योंकि यह प्रणवयुक्त पदार्थ सत् या स्वतःसिद्ध है। हमें सुमति प्राप्त हो, हम उस सुमतिको भजन करने योग्य सुमति लाभ कर सकें।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

मनपर आक्षेप

रे मन, जग पर जानि ठगायो।
धन-मद, कुल-मद, तरुनी कै मद, भव-मद हरि बिसरायो॥
कलि-मल-हरन, कालिमा-टारन, रसना स्याम न गायो।
रसमय जानि सुवा सेमर कौं चोंच घालि पछतायो॥
कर्म-धर्म, लीला-जस, हरि-गुन इहिं रस छाँव न आयो।
सूरदास भगवंत भजन बिनु कहु कैसे सुख पायो ?

प्रश्नोत्तर

(आशीर्वचन एवं जीवोंके प्रति वचन)

श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने नववर्षमें क्या कृपाशीर्वाद किया है ?

"नववर्ष तुम जययुक्त हो, श्रीश्रीमायापुरकी विशेष उन्नति करो, भगवद्भक्तिके सभी ग्रंथ प्रकाश करो, जगतको श्रीहरिनामसे परितृप्त करो, सभी जीवोंको ऐसी प्रवृत्ति प्रदान करो, जिससे वे शुद्धभक्तिका अवलम्बन कर शुद्ध नामपरायण हों।"

—'नववर्ष' स० तो० ६।१

२—श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने ज्ञानियोंको किस प्रकार अग्रसर होनेके लिए कहा है ?

"भाई ! आगे बढ़ो, चिन्मात्र-प्रतिभा (केवल ज्ञानरूप निर्विशेष ब्रह्म) का भेद कर चिन्मय धाममें प्रवेश करो। वहाँ पहुँचनेपर परब्रह्म एवं उनका चिद्विलास देख पाओगे। तब अखण्ड ब्रह्मरस क्या वस्तु है, उसका आस्वादन पाकर सूखी लकड़ीकी तरह आत्मा की अवगति और नहीं करोगे।"

—चै० शि० ६।३

३—श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका सभी जीवोंके प्रति क्या आदेश है ?

"हे भाईयों ! निरपेक्षता विषयके सम्बन्धमें ही रहें। भगवत्सम्बन्धमें उसे चित्त से दूर करो। भगवानकी नित्यलीला अवलम्बन कर उनका नित्य स्वरूप प्राप्त करो। साधनभक्ति द्वारा भावभक्ति एवं उसकेद्वारा निर्गुण प्रेमभक्ति प्राप्त करो। ईश्वर या परमात्मा आदि साम्बन्धिक (आंशिक) स्वरूपोंका परित्याग कर नित्य स्वरूप भगवान्‌को प्रीतिसूत्रद्वारा प्राप्त करो।"

—'समालोचना' स० तो० २/६

४—मनुष्यके प्रति ठाकुर भक्तिविनोदजी का प्राथमिक उपदेश क्या है ?

"मनुष्य देह दुर्लभ है, इसका एक दिन भी व्यर्थ नहीं चला जाय।"

—'सहजिया मतका हेयत्व' स० तो० ४।५

५—श्रील ठाकुर भक्तिविनोदजीने किस प्रकार धर्म जीवन बितानेका उपदेश दिया है ?

"इस जगत्‌में धर्म-धनकी अपेक्षा और धन नहीं है। शरीर क्षणभंगुर है, आज है, कल नहीं। हमारे परम दयालु श्रीचैतन्य महाप्रभुने कृपा कर जगत्‌को जो नाम एवं प्रेमधन दिया है, उसे साधु-गुरुके निकट संग्रह करना। जगत्‌में श्रीमद्भागवत एवं श्रीचैतन्य चरितामृत—ये दोनों ग्रन्थ अमूल्य रत्न हैं। यत्नपूर्वक इनकी आलोचना करनी होगी। दूसरे लोगोंको अपनी विद्या दिखलानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। लोगोंको भक्तिधन दान करना होगा। निष्पाप जीवनमें धर्मपूर्वक अर्थ उपार्जन कर अपना एवं अपने निजजनोंका प्रतिपालन करना होगा। किन्तु किसी भी समय श्रीकृष्णनामको नहीं भूलना होगा।"

—ठाकुरका आत्मचरित्र

६—कृष्णभक्त क्या Plaque (महामारीविशेष) का भय करते हैं ?

"प्लेगसे इतना भय करना केवल अवैष्णवता मात्र है। देखो भाई! प्लेग क्या कर सकता है? यदि भलाई चाहते हो, तो प्लेगसे एक शिक्षा ग्रहण करो। कल यदि प्लेग पकड़े, तो और जीवन नहीं रहेगा। तुम्हारी इतनी सुख-सम्पत्ति कहाँ चली जायगी, एकबार विचार कर देखो। अतएव व्यर्थ समयको नष्ट न कर निरन्तर निष्कपट भक्तिके साथ हरिनाम करो। कोटि-कोटि प्लेग आकर भी तुम्हारा कुछ भी नहीं कर सकते।"

'वैष्णवका व्यवहार दुःख', स० तो० १०।२

७—ठाकुर भक्तिविनोदजीने परदुःख कातर व्यक्तियोंको कौन सा आदर्श अनुसरण करनेके लिए कहा है ?

"जगत्में सभी जीवों का सम्मान करें, सभी जीवोंके दुःख-निवृत्तिके लिए यत्न करें, सभी जीवोंके साथ साथ रहकर उनकी मंगल चेष्टा करें, किन्तु श्रीगौरांगदेवके परम अनुसरणीय चरित्र एवं महान् सारगर्भ उपदेश कभी न भूलें।"

—'श्रीगौरांग-समाज', स०तो० ११।३

८—श्रील ठाकुर भक्तिविनोदजीने अचिरस्थायी मनुष्य जीवनका कौन-सा श्रेष्ठ कर्त्तव्य निर्द्धारण किया है ?

"तुम्हारे परमायुके दिन थोड़े ही हैं। जो कुछ दिन बाकी है, वे भी नाना विघ्नोंसे परिपूर्ण हैं। अतएव भाई! विशेष यत्न एवं आग्रहके साथ इस भागवतीय रसका पान करते रहो।"

—'सिद्धप्रेमरस-मधुरिमा', स०तो० २०/३

९—श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने श्रेयः पथके पथिकोंको किस प्रकार दृढ़ होनेके लिए कहा है ?

"Maitain thy part in spirit world,
As firmly as you can.
Let never matter push thee down
O stand heroic man!"

—Saragrahi Vaishnava.

अर्थात् हे बहादुर मनुष्य! तुम सब समय परमार्थ राज्यमें जितनी दृढ़तासे हो सके, उतनी दृढ़तासे अपने स्थानमें बने रहो। कभी विषयोंको तुम्हें नीचे गिराने का अवसर मत देना।

१०—श्रीचैतन्यचरितामृत-पाठकके प्रति ठाकुर भक्तिविनोदजीका क्या उपदेश है ?

"वेदान्तशास्त्र एवं रस-शास्त्र जिस प्रकार यत्नपूर्वक सद्गुरुके निकट अध्ययन करना होता है, उसी प्रकार इस महाग्रन्थ (श्रीचैतन्यचरितामृत) का पाठ करें।"

—'प्रबोधन' अ० प्र० भा०, स०तो० ७।११

११—सद्ग्रन्थके पाठकके प्रति ठाकुर भक्तिविनोदने किस प्रकारसे सावधान किया है ?

"जो ग्रन्थ पाठ करें, उसका सम्पूर्ण रूपसे ही पाठ करें, नहीं तो केवल निरर्थक वादपरायण होकर आखिर तक तार्किकोंमें गिने जायेंगे।"

—चै० शि० ३।३

१२—आध्यक्षिक(जागतिक) ग्रन्थप्रिय

व्यक्तियोंके प्रति ठाकुर श्रील भक्तिविनोदजी का क्या सदुपदेश है ?

"केवल पुस्तक आलोचना तक सीमित न रहें। साधु-वैष्णवों का चरणाश्रय कर साधन, भावभक्ति एवं प्रेम—इन सभी तत्वों का यथार्थ पार्थक्य अनुभव करेंगे। वैष्णव-धर्म पुस्तकगत तत्व नहीं है। 'निग्रन्थ' शब्दके द्वारा श्रीगुरुदेव एवं वैष्णवों को ग्रन्थातीत कहा गया है। अतएव वैष्णव-तत्व एक रहस्य है।"

—'समालोचना', स० तो० ६।२

ठाकुर भक्तिविनोदद्वारा कलि-भीत भजनकारियोंके लिए कौन-से पथका निर्देश किया गया है ?

"सर्वदा स्मरण रखना होगा कि यह काल कलिकाल है। जो शुद्धभक्तिके अनुशीलन में प्रवृत्त हों, कलि उनके सत्कार्यमें बाधा देने के लिए बहुतसे कुपथोंकी सृष्टि करता है। श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरित्र एवं उपदेशानुसार जो करेंगे, उसमें कलिका अधिकार नहीं है।"

—'वैष्णव-सेवा', स० तो० ६।१

१४—ठाकुर भक्तिविनोदजीने साधकोंको किस प्रकार दृढ़ एवं सहिष्णु होनेके लिए कहा है ?

"तुम्हें कोई धक्का देकर फेंके, अपमान ही करे, अभद्र व्यक्ति वंचित ही करे, कोई ताड़ना करे, कोई बांध दे, कोई तुम्हारी सम्पत्ति हरण कर ले, कोई तुम्हें थुत्कार (थूकना) दे, कोई तुम्हारे शरीरपर मूत्र त्याग करे, एवं अज्ञ व्यक्ति बहुत प्रकारसे तुम्हें प्रकम्पित करे, तथापि तुम दृढ़ रूपसे श्रेयस्कामी बनो एवं मनको भक्तिके आश्रित बुद्धिके द्वारा कुविषयसे अवश्य ही उद्धार करोगे।"

—'साधनभक्ति', श्री भा०म०मा० १२।५

१५—श्रील ठाकुर भक्तिविनोदजीने श्रीचैतन्य महाप्रभुके निष्कपट सेवकोंको कैसा आश्वासन दिया है ?

"करुणामय श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कृपा से अविलम्ब (शीघ्र ही) में सभी सामाजिक अमङ्गल दूरीभूत होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं। अकृत्रिम (यथार्थ) रूपसे उन श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणाश्रय करनेपर और कोई भी विषयकी चिन्ता नहीं रहेगी।"

—'मनुष्य सम्बन्ध एवं वैष्णव-धर्म, प्रथम प्रबन्ध', स० तो० २।७

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद
श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

कर्मवादका हेयत्व

[परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीद्वारा प्रदत्त भाषण]

परिक्रमा एवं तीर्थस्नानादि दर्शनका तात्पर्य न समझकर वैष्णवोंका आनुगत्य छोड़कर अपनी इच्छानुसार केवल उन्मत्तोंकी तरह घूमने-फिरनेसे ही हमारा किसी प्रकारसे मंगल न होगा। तीर्थ-दर्शन ऐसा होनेपर केवल भ्रमण तक ही सीमित रह जायगा। आप लोग जब हमारे साथ आये हैं, तब हमारे कर्त्तव्यकी दृष्टिसे आप लोगोंको इस विषयमें सावधान करानेके लिए बाध्य हुआ हूँ। श्रवणके माध्यमसे ही हमारे लिए दर्शन होना आवश्यक है। 'श्रवण' न होने पर हमारा 'दर्शन' सम्यक् न होगा। अतएव हमारे गुरुवर्ग महोदयोंने कानों द्वारा दर्शन करनेका उपदेश दिया है। गया 'कर्मक्षेत्र' है, काशी 'ज्ञानक्षेत्र' है एवं प्रयाग 'भक्तिक्षेत्र' है। भगवद्भक्त लोग कर्म एवं ज्ञानका आदर नहीं करते। श्रीचैतन्य चरितामृतमें कहे गये विद्यानगरके दो महाभागवत, जिनके लिए श्रीभगवान् अपने श्रीमूर्त्ति स्वरूपसे एक सौ दिनका पथ चलकर साक्षी देने आये थे, गया, वाराणसी, प्रयाग आदि दर्शन कर श्रीधाम मथुरा आये थे। 'महाजनो येन गतः सः पन्थाः।' अतएव हमारे लिए महाजनोंका सब प्रकारसे आनुगत्य या अनुसरण ही कर्त्तव्य है। हम गुरुवर्गके पदांकोंका अनुसरण करते हुए ही परिक्रमा पथमें आगे बढ़ेंगे।

वेद-वेदान्त उपनिषदादि सभी शास्त्रोंने ही कर्ममार्गका हेयत्व दिखलाया है। यहां तक कि श्रीशंकराचार्यजीने भी कर्मवादका खण्डन किया है। वेदान्त-दर्शन "कृतात्यये अनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्याम्" सूत्रमें भी कर्म एवं कर्म-फलका अनित्यत्व दिखलाया है। गयाक्षेत्रमें पिण्डदान एवं तर्पणादि क्रिया कर्मजड़ स्मार्तों के लिए विशेष रुचिकर होने पर भी स्वयं भगवान् शचीनन्दन श्रीगौरहरिका गया में जानेका वैसा कोई उद्देश्य नहीं था। श्रीभगवान्‌ने जिन्हें पिताके रूपमें वरण किया है, उनकी प्रेतलोक-प्राप्ति या अधःलोक प्राप्ति कैसे हो सकती है? इसको कैसे विश्वास किया जा सकता है? इसलिए प्रभुका गयामें जानेका दूसरा उद्देश्य था, यह बात स्वयं ही उन्होंने अपने श्रीमुखसे कहा है। उन्होंने श्रीईश्वरपुरीपादके निकटसे दीक्षा-ग्रहणका अभिनय करते हुए कहा है—

"कृष्ण पादपद्मेर अमृत रसपान। आमारे कराओ तुमि एइ चाहि दान।" अर्थात आप कृपा कर मुझे कृष्ण-पादपद्मका रस पान करायें, यही दान मैं आपसे चाहता हूँ।

बहुतसे व्यक्ति श्रीमन्महाप्रभुकी गया-यात्राका उद्देश्य समझ न पाकर 'उन्होंने

स्मार्त्तवादको प्रश्रय दिया है', ऐसा कहनेकी धृष्टता पोषण करते हैं। श्रीगौरहरि सारे जगतके लोक-शिक्षक प्रभु हैं। उन्होंने यहाँ केवलमात्र एक 'लौकिक आचार' दिखलाया है। दूसरी ओर कर्मजड़ स्मार्त्त लोग 'एते प्रेत तर्पणकाले भवन्तीह'' मन्त्र उच्चारण कर श्राद्धादि समयमें मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे जो पिण्डादि दान करते हैं, वह सम्पूर्ण रूपसे युक्तिविरुद्ध है। क्योंकि जो व्यक्ति देहान्तके समय उच्चगति या उन्नत लोक प्राप्त किये हैं, या मुक्त-भूमिकामें पहुँचे हैं, उन्हें यदि भगवान् के प्रसादको छोड़कर और कुछ निवेदन किया जाय, तो क्या वे उसे ग्रहण करेंगे? शास्त्रोंका मत है कि बद्धजीवोंका ही पुनर्जन्म होता है। 'अपुनर्भव' मुक्ति सर्वत्र ही प्रचारित है। अक्षय स्वर्गकी बात केवल वाक्यविन्यास मात्र है। उसका यथार्थ तात्पर्य साधारण रूपसे जाना नहीं जाता। तब 'स्वर्ग' शब्दका अर्थ यदि वैकुण्ठादि नित्य धामसमूह माना जाय, उस समय अक्षय स्वर्गकी सार्थकता है। जीवमात्र की मृत्युके पश्चात्की अवस्थाको लेकर कुछ मतभेद देखा जाता है। किसीके मतसे बद्धजीव अन्य स्थानमें जन्म ग्रहण कर मृत्युमुखमें पतित होता है। और कहीं तो मृत्युके पश्चात् वायुभूत निराश्रय अवस्थामें रहकर उसके पीछे कर्मानुसार जन्म लेता है। खैर, जैसा भी क्यों न हो, कर्मके तारतम्य अनुसारसे किसी किसीको प्रेत-लोक, भूतलोक, स्वर्ग-लोक आदि भिन्न भिन्न अश्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त करने का अवसर मिलता है। ये विचार सभी परित्याग कर साधारण उदाहरण ग्रहण करने पर भी हम विषयको अर्थात् स्मार्त्त-श्राद्ध आदिका परिणाम अच्छी तरह समझ सकेंगे। श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामीपादकी स्मृति या वैष्णव-स्मृतिके अनुसार प्रचारित श्राद्ध पद्धति निर्दोष एवं सब प्रकारसे पवित्र है। स्मार्त्तोंके विचारके अनुसार साधु-असाधु जिस किसी व्यक्तिकी मृत्यु होनेपर उनके श्राद्धमें जिस प्रकार पिण्ड-दानादिकी व्यवस्था देखी जाती है, वह सर्वत्र ही एक प्रकार है। साधु व्यक्ति ने यदि चिरजीवन सत्कर्म आदिके द्वारा निर्मल पवित्र जीवन यापन किया हो, या उन्होंने मोक्ष-पदवी प्राप्त की, हो, तो वे भी स्मार्त्तोंके श्राद्धकालमें "एते प्रेत-तर्पणकाले भवन्तीह" मन्त्रके द्वारा अपने लक्ष्यसे बाध्य होकर गिर जाते हैं। यदि ऐसा ही हो, तो उस साधु व्यक्तिके मृत्युके किस प्रकार उसके धार्मिक पिताको प्रेतलोक-गत, बद्ध, हेय या घृणित समझकर स्मार्त्तोंके अधीन होकर पिण्डदान कर सकते हैं? गौड़ीय वैष्णव लोग ऐसे स्थलमें भगवान् वासुदेवको निवेदित महाप्रसाद, जो ब्रह्मतुल्य निर्विकार वैकुण्ठवस्तु है, उसकेद्वारा ही पिण्ड दानादि कर मरे व्यक्ति बद्ध या मुक्त, जिस किसी अवस्थामें क्यों न रहे, उसकेद्वारा उनका सन्तोष-विधान करते हैं। यहाँ श्रीमद्भगवद्गीताका यह श्लोक विशेष रूपसे विचार करने योग्य है—

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।
(गीता ९।२५)

अर्थात् अपने अपने कर्मानुसार बद्धजीव

भूत-लोक, पितृ-लोक, देवलोक एवं भगवद्भक्त नित्य वैकुण्ठादि भगवल्लोक प्राप्त करते हैं। मृत व्यक्तिने किस लोकमें गमन किया है—इस बातको यदि श्राद्धकर्त्ता स्थिर कर न सके, तो ऐसा एक पथ अवलम्बन करना होगा, जिसके द्वारा सभीको ही परितृप्त किया जा सकता है। जो द्रव्य भूत, प्रेत-लोकके सिवा देव-मनुष्य लोकादिमें प्रवेश नहीं करता, उसके द्वारा सभीकी तृप्ति नहीं हो सकती। वैकुण्ठादि मोक्ष-लोकोंकी बात दूर रहे। विष्णु-नैवेद्य सभीके लिए ही मङ्गलदायक एवं सर्वत्र उसकी अबाध गति है।

पौराणिक उपाख्यान

भक्त पुण्डरीक

प्राचीन कालमें पुण्डरीक नामक एक महाबुद्धिमान् ब्राह्मण थे। वे सर्वदा गुरुजनोंके अनुगत होकर नियमपूर्वक रहते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। उन्होंने अपनी तपस्याके बलसे इन्द्रियोंको अपने अधीन कर लिया था। वे वेद-वेदांग एवं अन्यान्य शास्त्रोंमें निष्णात थे। भक्तप्रवर नारदजीकी भाँति वे सर्वव्यापी यज्ञपति भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक आराधना करते थे एवं सर्वदा उन्हीं का ध्यान किया करते थे। वेदादि शास्त्रोंका अध्ययन एवं भगवद्भजन—ये ही उनके नित्य कार्य थे। अपने सद् व्यवहारके कारण वे सभीके बड़े प्रिय हो चुके थे। वे सर्वदा पराविद्याकी आलोचना करते। वे सभी भूतोंमें भगवद्दर्शन करते, उनके हितकी चेष्टा करते रहते। उनकी संसारके भोगों के प्रति पूर्ण विरक्ति हो गयी थी। उनकी बुद्धि संसार समुद्र पार करने उपयुक्त थी।

उन्होंने ऐसा वैराग्य प्राप्त किया कि अपने माता-पिता, भाई-बन्धु-बान्धव एवं मित्रादि का तृणवत् परित्याग कर वे शाक, फल, मूलादि आहार करते हुए पृथ्वी पर सर्वत्र भ्रमण करने लगे। उन्होंने यौवन रूप,आयु एवं धनादिकी अनित्यता अनुभव कर समस्त त्रिभुवनको मिट्टीके एक तुच्छ ढेलेके समान समझा। इसके पश्चात् उन्होंने सभी पुण्य तीर्थक्षेत्रों एवं भगवद् लीला-स्थलियोंका भ्रमण किया। इस प्रकार बहुत काल भ्रमण

करते करते अन्तमें वे श्रीशालग्राम क्षेत्रमें पहुँचे।

वह तीर्थ तत्वज्ञानी ऋषियों का निवास स्थान था। ऋषि मुनियोंके आश्रमोंसे परिपूर्ण वह तीर्थ चक्रनदी द्वारा सुशोभित था एवं वहाँ के शिलाखण्ड भगवान्‌के चक्रके चिह्नसे शोभित हैं। वह अत्यन्त एकान्त स्थान था एवं बड़ा विस्तृत क्षेत्र था। वहाँ चक्रके चिन्होंसे सुशोभित कुछ प्राणी रहते थे, जिनका दर्शन बहुत ही पुण्यजनक था। वहाँ असंख्य दर्शनार्थी आया जाया करते थे। उस महापवित्र शालग्राम-क्षेत्रमें महाभागवत पुण्डरीकजी प्रसन्नचित्त होकर रहने लगे एवं नियमित रूपसे देवह्रद-तीर्थमें, पूर्व-जन्म स्मृतिदायिनी सरस्वतीके जलमें, चक्र-कुण्ड एवं चक्र-नदीमें स्नान करते एवं भगवद्भजनमें रत रहते।

उस क्षेत्रके प्रभावसे एवं तीर्थोंके तेजसे उनका चित्त चरम पवित्र एवं प्रसन्न हो गया। इस प्रकार शुद्धचित्त एवं ध्यानयोगमें तत्पर रहकर परम सिद्धिकी इच्छासे परम भक्तिके साथ वे शास्त्रोंमें वर्णित विधिके अनुसार जगत्पति भगवान् विष्णुकी आराधना करने लगे। अपनी इन्द्रियोंको वश करते हुए वे जगत्‌के सुख-दुखोंसे मुक्त होकर वहाँ रहने लगे। उनकी सर्वत्र समदृष्टि थी। वे निरालस्य होकर दृढ़ भक्तियोगके द्वारा भगवान् का भजन करते रहते। समस्त पुरुषार्थोंके ज्ञाता निष्पाप महामना पुण्डरीकजी देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुमें चित्त लगाकर उनकी आराधना एवं उन्हींका चिन्तन करते हुए उनके परम अनुग्रहको पानेकी आशासे भजन करने लगे।

जब उनके इस प्रकार वहाँ रहते बहुत समय बीत गया, तब एक दिन साक्षात् सूर्यके समान तेजस्वी, वैष्णवजनोंके परम बन्धु, परमार्थवेत्ताओंमें उत्तम एवं विष्णु भक्तिपरायण देवर्षि नारदजी परम भक्त पुण्डरीकको देखनेकी इच्छासे वहाँ पधारे। सर्व शास्त्रोंके ज्ञाता, बुद्धिमान्, पूर्ण तेजस्वी, नारदजीको देखकर पुण्डरीकको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अत्यन्त विनयके साथ हाथ जोड़ते हुए उनको पाद्य-अर्घ्य आदि प्रदान कर उनके चरणोंमें गिरकर प्रणाम किया। नारदजीके दर्शनसे मुग्ध होकर मन ही मन तर्क वितर्क करने लगे। उनके मनोरम स्वरूप, हाथमें सुशोभित वीणा, मस्तकपर वर्त्तमान जटा-जूट आदि देखकर कुछ ठीक नहीं कर पाए। अतएव उन्होंने पूछा—"हे परम दिव्य ऋषे! आप कृपा कर बतलायें कि आप कौन हैं एवं किस हेतु पधारे हैं। इस पुरीमें पुण्यहीन व्यक्ति आपका दर्शन प्राप्त नहीं कर सकते।"

नारदजी कहने लगे—"हे भक्तवर पुण्डरीक! मैं नारद हूँ। तुम्हारे दर्शनोंकी लालसासे ही यहाँ आया हूँ। तुम्हारे जैसे भगवद्भक्त सुदुर्लभ हैं। भगवद्भक्त चाण्डाल होने पर भी उसके स्मरणमात्रसे, वार्त्तालाप से या सम्मानित होने पर या स्वेच्छासे ही दूसरोंको पवित्र कर देता है। फिर तुम्हारे समान ब्राह्मण्य स्वभावसम्पन्न भक्तके बारेमें

कहना ही क्या है? मैं शार्ङ्ग धनुषधारी भगवान् वासुदेवका दास हूँ।" नारदजी द्वारा ऐसा परिचय प्रदान करने पर उनके दर्शनसे परम आनन्दित होकर पुण्डरीकजी प्रेमसे गद्गद होकर इस प्रकार मधुर वाणी बोलने लगे—"आज मैं कृतकृत्य हो गया। एवं मेरे जीवन सार्थक हुआ। आज मेरे पितर लोगोंका उद्धार हो गया। मैं आपका सेवक हूँ। हे मुनिश्रेष्ठ! आप मुझपर कृपा करें। मैं अपने पूर्वजन्मोंके कर्मानुसार इस संसाररूपी वनमें भटक रहा हूँ। आप कृपा कर बतलावें कि किस प्रकार मेरा इससे उद्धार होगा? मेरे लिए परम कर्त्तव्य क्या है, यह अत्यन्त गोपनीय होने पर भी उसका उपदेश मुझे कृपया दें। आप सारे व्यक्तियोंकी सहायता करते हैं, और वैष्णवोंके लिए परम आश्रय दाता हैं।"

इस पर नारदजी बोले—"हे द्विज! इस जगत्में अनेक शास्त्र एवं अनेक प्रकारके कर्म हैं। इसी तरह यहाँ अनेकों प्राणियाँ हैं एवं उनके लिए मार्ग भी अनेक हैं। इसीलिए जगत् बड़ा विचित्र जान पड़ता है।

कुछ लोगोंका यह विचार है कि जगत् अव्यक्त प्रकृतिसे उत्पन्न होकर समय आनेपर उसीमें लीन हो जाता है। हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ! कुछ दूसरे तत्वदर्शी व्यक्ति आत्माएँ अनेक, नित्य एवं सर्वत्र विचरणकारी बतलाते हैं। हे निष्पाप! इन सभी बातोंपर विचार कर नाना मतोंके जाननेवाले सभी ऋषि लोगोंने उनकी बुद्धि एवं विद्याके अनुसार जिन सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया है, उसे सावधानीसे सुनो। यह परम गोपनीय परमार्थ तत्व घोरतर भवसागरसे मुक्ति दिलानेवाला है। मनुष्योंकी बुद्धि प्रायः वर्त्तमान विषयोंको ही ग्रहणकर पाती है। वह सुदूरवर्त्ती भूत एवं भविष्यको ग्रहण नहीं कर पाती। हे उत्तम व्रती पुण्डरीक! इस विषयमें पहले मेरे द्वारा पूछे जाने पर ब्रह्माजीने जो कुछ मुझे बतलाया था, वह कह रहा हूँ। तुम सावधानीसे श्रवण करो। मेरा प्रश्न था— सबसे उत्तम ज्ञान एवं उत्तम योग कौन-सा है? उसके उत्तरमें श्रीब्रह्माजीने कहा था—तेईस विकारोंके कारण रूप चौबीसवें तत्व प्रकृतिसे भिन्न पच्चीसवाँ तत्व ही सम्पूर्ण प्राणियोंमें वर्त्तमान 'नर' (पुरुष या आत्मा) कहलाया जाता है। सारे तत्व (चित् एवं अचित्) इसी नरसे उत्पन्न हैं, अतएव वे 'नार' कहलाते हैं। ये नारके जो अयन या आश्रय हैं अर्थात् जो इनमें व्याप्त हैं, वे भगवान् 'नारायण' कहे जाते हैं। सृष्टिकालमें सारा जगत् भगवान् नारायणसे ही प्रकट होता है एवं प्रलयके समय उन्हींमें लीन हो जाता है। नारायण ही परब्रह्म, परम तत्व, परम ज्योति एवं परम आत्मा हैं। वे परसे भी पर हैं। उनसे बढ़कर कोई तत्व नहीं है एवं उनको छोड़कर किसीकी भी सत्ता नहीं है। वे सबके भीतर एवं बाहर स्थित हैं। इसलिए देवताओंने उन्हें साकार (सच्चिदानन्द स्वरूप) बतलाया है एवं वे 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्र का ध्यान अनन्य मनसे करते हैं। जो व्यक्ति अनन्यचित्तसे भगवान् नारायणका ध्यान करे, उसके लिए दान, तीर्थसेवन, तपस्या एवं यज्ञादिकी क्या

आवश्यकता है ? भगवान् नारायणका ध्यान ही सर्वोत्तम ज्ञान है एवं इससे बढ़कर और कोई दूसरा योग भी नहीं है। परस्पर विरोधी अर्थ प्रतिपादनकारी दूसरे-दूसरे शास्त्र-विस्तार से क्या प्रयोजन है ? जिस प्रकार एक नगर से बहुतसे मार्ग निकलते हैं, ठीक उसी प्रकार भिन्न भिन्न शास्त्रोंके ज्ञान सभी नारायणसे ही निकले हैं। वे भगवान् अव्यक्तरूपसे सर्वत्र व्याप्त हैं, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, नित्य वर्त्तमान सनातन पुरुष एवं सारे जगत्के आदि कारण हैं। वे दूसरे किसी से उत्पन्न नहीं हैं, अतएव 'स्वयम्भू' कहलाते हैं। वे आदि, अन्त रहित एवं सम्पूर्ण प्राणियोंको प्रकट करनेवाले हैं। वे विभु, अचिन्त्य, सबके प्रिय, नित्य एवं कार्य-कारणस्वरूप हैं। वे सारे जगतमें निवास करते हैं एवं सम्पूर्ण जगत उनमें निवास करता है। इसलिए वे भगवान 'वासुदेव' कहे जाते हैं। वे पुराण पुरुष, त्रिकालदर्शी एवं अविकार हैं। यह सम्पूर्ण चराचरमय जगत उन्हींसे व्याप्त होनेके कारण स्थित है। अतएव वे 'विष्णु' कहलाते हैं। युगान्त होनेपर महत्तत्त्व आदि सभी तत्त्व एवं सभी प्राणियोंका उन्हींमें निवास होनेके कारण 'वासुदेव' हैं। कुछ लोग उन्हें पुरुष (एकमात्र भोक्ता), ईश्वर (सबके वशीकर्त्ता) एवं अविनाशी बतलाते हैं। कोई कोई उन्हें विज्ञान स्वरूप और कोई परब्रह्म और कोई आदि एवं अन्त रहित 'काल', कोई और सनातन जीव (आत्मा) कहते हैं। कोई उन्हें परमात्मा, कोई तो अनामय (क्षयरहित, विशुद्ध), कोई क्षेत्रज्ञ (जीव एवं मायाके अन्तर्यामी), कोई छब्बीसवाँ तत्त्व (प्रकृति एवं पुरुषसे भिन्न पुरुषोत्तम), कोई अंगुष्ठपरिमाण वाले एवं और कोई कमल-पुष्पके मकरन्दके एक कणके समान 'अणु' मानते हैं। ये सभी नाम जो उल्लेख किये गए हैं एवं ऋषि-शास्त्रोंद्वारा वर्णित भिन्न-भिन्न नामोंद्वारा साधारण लोग भेद-भ्रम प्राप्त कर मोहमें पड़ जाते हैं। एक ही शास्त्र होनेपर ज्ञान निश्चयात्मक होता है। शास्त्र बहुतसे हैं। अतएव ज्ञानका तत्त्व सुदुर्भ है। अतएव सभी शास्त्रोंका सम्यक अवलोकन कर एवं बारम्बार विचार कर यही एक बात सभी सिद्धान्तों साररूपसे प्रकट हुई कि सब समय नारायणका ही ध्यान करना चाहिए। अतएव मोहमें डालनेवाले सारे शास्त्र-विस्तारको छोड़कर अनन्य मनसे उत्साहपूर्वक भगवान् नारायणका ध्यान करो। ऐसा सब समय चिन्तन करनेपर उन अविनाशी देवदेव नारायणका तत्त्व जानकर तुम शीघ्र ही परम मुक्तिरूप भगवद्-पार्षदत्व प्राप्त कर लोगे, इसमें कोई सन्देह नहीं। इस प्रकार ब्रह्माजीके मुखसे इस परम दुर्लभ ज्ञानकी बात श्रवण कर मैं भी तभीसे भगवान् नारायणकी परिचर्यामें लग गया। जो व्यक्ति 'ॐ नमो नारायणाय'—इस सनातन ब्रह्मस्वरूप मन्त्रको जानकर जप करें, वे अन्तकालमें भगवान् विष्णुके परम धामको प्राप्त कर लेते हैं। भगवान् नारायण जगद्व्यापी सनातन परमेश्वर हैं। वे ही सारे लोकोंकी सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय आदि कार्य करते हैं। सर्वक्षण उनके नाम, रूप, गुण, लीला आदियोंका श्रवण, कीर्त्तन एवं स्मरण करना चाहिए। अपने हित चाहनेवाले व्यक्ति

पुरुषको सर्वथा भगवान् नारायणकी आराधना करनी चाहिए। निःस्पृह, नित्यप्रसन्न, ज्ञानी, जितेन्द्रिय, ममता-अहंता रहित, राग-द्वेष आदि विकार रहित भगवद्-ध्यानयोगकारी व्यक्ति जगदीश्वरका साक्षात्कार प्राप्त कर लेते हैं। जो व्यक्ति त्रिभुवनका अनित्य सम्बन्ध परित्याग कर जगद्गुरु भगवान वासुदेवका कीर्त्तन करें, वे उन जगत्पतिका दर्शन प्राप्त कर लेते है। अतएव हे पुन्डरीक! तुम भी भगवान् नारायणकी आराधनामें तत्पर ही जाओ।

अवहेलनापूर्वक जिनका नाम ग्रहण करने पर भी जो भगवान् भक्तको अपना परम धाम प्रदान कर देते हैं, उन भगवान् नारायणके सिवा और कौन महान् उदार हैं, जो मांगी हुई वस्तुको देनेमें समर्थ हैं? जप या स्वाध्याय या जो भी कार्य किया जाए, वह उन देवेश्वर भगवान् नारायणके उद्देश्यसे ही सर्वदा आलस्य त्याग कर करो। अनेकों मन्त्रों एवं अनेकों व्रतों से क्या लाभ है? 'ॐ नमो नारायणाय' यह मन्त्र ही सब मनोरथों एवं सर्वकामनाओंको सिद्ध करनेवाला है। चीर-वस्त्रधारण, जटाधारण, त्रिदन्ड-धारण, माथाका मुन्डन या तरह तरहके भूषणोंका धारण आदि बाहरी कार्य धर्मके कारण नहीं हो सकते। जो मनुष्य भगवान् नारायणकी शरण ग्रहण कर चुके हैं, पहले भले ही वे निर्दयी, दुष्ट, सदा पापरत क्यों न रहे हों, वे भी भगवानके परम धामको पधारते हैं। हजारों जन्मोंमें भी जिसकी ऐसी बुद्धि हो जाये कि "मैं देवदेव शार्ङ्ग धनुष धारी भगवान वासुदेवका दास हूँ", उसे निश्चय ही भगवान्का सालोक्य प्राप्त होता है। फिर जो पुरुष जितेन्द्रिय होकर सदा भगवान्में ही अपने प्राणोंको नियुक्त रखे उसके लिए क्या कहना?"

परोपकारमें सर्वदा रत रहनेवाले त्रिभुवन के एकमात्र भूषण देवर्षि नारदजी ऐसी बातें बतलाकर वहीं अन्तर्धान हो गए। अब धर्मात्मा पुन्डरीक भी एकमात्र भगवान नारायणके भजनमें तत्पर हो गये। वे बारम्बार इस प्रकार उच्चारण करने लगे—"भगवान केशवको नमस्कार है। हे महायोगिन्! आप मुझपर प्रसन्न होगें।" ऐसा कहकर पुरुषार्थ-साधनमें परम चतुर तपोधन पुन्डरीकजी अपने हृदय कमलरूपी आसनमें जनार्दन भगवान गोविन्दकी स्थापना कर तपकी सिद्धि देनेवाले उस शालग्राम क्षेत्रमें दीर्घ काल तक एकाकी ही वास करते रहे। वे महाभागवत स्वप्नमें भी भगवान केशवको छोड़कर और किसी भी वस्तुको नहीं देखते थे। उनकी नींद भी उनके पुरुषार्थ-साधनमें बाधा नहीं देती थी। अपनी तपस्या, ब्रह्मचर्य (भगवद् चिन्तन), शौचाचारके पालन एवं जन्म-जन्मान्तरकी साधनासे परिपक्व हुए भगवद्भक्तिसाधक संस्कारके बलसे निर्मल चित्त होकर सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र साक्षी देवदेव भगवान विष्णुकी कृपाद्वारा परम उत्तम वैष्णवी सिद्धि प्राप्त कर ली। उनके निकट सिंह, व्याघ्र, अन्यान्य हिंसक जीव-जन्तु मृगादि हिंसाशून्य जीव परस्पर आपसके स्वाभाविक वैर-भावका परित्यागकर मिलकर रहते थे। उनके निकट उन हिंसक जन्तुओंकी इन्द्रिय

वृत्तियाँ अत्यन्त शान्त रहती थीं।

इसके पश्चात् एक दिन कमल-दलके समान विशाल नेत्रवाले जगदीश्वर भगवान् नारायण कृपापूर्वक उन भक्तप्रवर पुण्डरीकके सम्मुख आविर्भूत हुए। उनके हाथोंमें शङ्ख चक्र, गदा आदि थीं। वे पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्स-चिह्न एवं लक्ष्मीका निवास-स्थान था। वे कौस्तुभ-मणि द्वारा विभूषित एवं दिव्य पुष्पोंकी माला द्वारा अलंकृत थे। वे श्यामवर्ण एवं गरुड़पर आरूढ़ होकर अत्यन्त शोभित हो रहे थे। भगवान्‌के ऊपर रजतमय श्वेत छत्र तना था, जो मोतियोंकी मालाओंसे युक्त था। छत्र एवं चामर-व्यजनादिद्वारा उनकी बड़ी शोभा हो रही थी।

उन भगवान् देवदेवेश्वर नारायणका प्रत्यक्ष दर्शन पाकर पुण्डरीकजीने अपने दोनों हाथ जोड़ लिये एवं उनको प्रणाम कर प्रेमसे परम विह्वल हो गये। उन भगवान् हृषीकेश की ओर आँखें विकसित कर इस प्रकार देखने लगे मानो उनको पी जायेंगे। जिनके दर्शन वे चिरकाल प्रार्थना कर रहे थे, उन भगवान्‌का प्रत्यक्ष दर्शन पाकर वे भक्तश्रेष्ठ पुण्डरीकजी परम प्रसन्न हुए। तीन पगोंसे त्रिलोकीको नाप लेनेवाले भगवान् पद्मनाभने पुण्डरीकसे कहा—"हे वत्स! पुण्डरीक! तुम्हारा कल्याण हो। हे महामते! मैं तुम पर बहुत ही प्रसन्न हूँ। तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, वही माँग लो। मैं उसे अवश्य पूरा करूँगा।"

भगवान नारायणकी ऐसी वाणी सुनकर भक्तप्रवर पुण्डरीक कहने लगे—"देवेश्वर! कहाँ मुझ जैसा अत्यन्त दुर्बुद्धि पुरुष और कहाँ अपने वास्तविक हितकी बात? हे माधव! आप मेरे लिए जो हितकर हो, सो कृपापूर्वक आज्ञा करनेकी प्रार्थना।" ऐसा पुण्डरीकद्वारा कहनेपर भगवान बड़े ही प्रसन्न हुए एवं हाथ जोड़े हुए खड़े उन भक्तसे कहने लगे- "हे सुव्रत! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरे ही साथ आ जाओ एवं मेरे ही समान रूप धारण कर मेरे नित्य-पार्षद बन जाओ।"

भक्तवत्सल भगवान नारायणद्वारा ऐसा प्रेमपूर्वक कहनेपर देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं एवं आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। उस समय इन्द्र आदि सभी देवता, किन्नर, गन्धर्व एवं सिद्धगण बड़े आनन्दित होकर साधुवाद देते हुए यशोगान करने लगे। इधर सर्वदेव-वन्दित जगदीश्वर भगवान वासुदेव पुण्डरीकके साथ गरुड़पर बैठकर अपने धामको चले गये।

अतएव हमारा भी कर्त्तव्य है कि अपना काय, मन,प्राण भगवानके चरणोंमें अर्पण कर भक्तोंकी एवं पुरुषोत्तम भगवानकी सेवा करें। सर्वदा उनकी कथा सुनें एवं उनके प्रसन्नकारी कार्य यत्नपूर्वक करें। भगवान नारायणसे विमुख व्यक्ति असख्य अश्वमेध एवं वाजपेय करनेपर भी पावन गतिको प्राप्त नहीं कर सकते। भगवानकी ऐसी स्तुति करनी चाहिए—"हे प्रभो! हे विष्णो! आप अजर अमर, द्वितीयरहित, सबके ध्यान करने योग्य आदि-अन्त रहित,सगुण (सच्चिदानन्द अप्राकृत

गुण), विगुण (जगत्से अतीत विलक्षणगुण), अत्यन्त महान् एवं अत्यन्त सूक्ष्म,सबके कारण, अनुपम होकर भी भक्तिद्वारा जाने जाते हैं। भक्तिद्वारा आपका स्वरूप दर्शन होता है। इस त्रिभुवनके ईश्वर एवं गुरु आपका मैं शरणागत होता हूँ।

—(श्रीनरसिंह-पुराणसे)

†*†*†

सन्दर्भ-सार

(भक्ति-सन्दर्भ-३४)

अतएव भगवानके प्रति रति उत्पन्न होनेका आदि एवं मूल कारण एकमात्र साधुसंग है। क्योंकि अनादिकालसे बहिर्मुख जीवोंकी अज्ञानता नाश करनेका एकमात्र उपाय साधुसंग है। उसको छोड़कर भगवद् विमुखता दूर करनेका और कोई भी उपाय नहीं है।

महाभारतके वनपर्वमें कहा गया है—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना
नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पंथाः॥

तर्ककी कोई प्रतिष्ठा (उपयोगिता) नहीं है, श्रुतियाँ भी परस्पर विभिन्न प्रकारकी हैं, और ऐसे कोई मुनि नहीं हैं, जिनका मत भिन्न नहीं हो अर्थात् भिन्न भिन्न मुनियोंके भिन्न भिन्न मत हैं। अतएव धर्मका तत्त्व अत्यन्त निगूढ़ होनेके कारण महाजनोंने जिस पथका अवलम्बन किया है, वही एकमात्र ग्रहण करने योग्य है।

श्रीप्रह्लाद महाराजजीने भी कहा है—

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमांघ्रिं
स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं
निष्किंचनानां न वृणीत यावत्॥

गृहासक्त व्यक्तियोंकी बुद्धि कदापि स्वेच्छासे या दूसरोंके उपदेशसे भगवत् चरणारविन्दोंमें नहीं लगती, जब तक कि ऐसे विषयाभिनिविष्ट व्यक्ति निष्किंचन महाजनोंकी चरणोंकी धूलिको नहीं ग्रहण करते। क्योंकि अनर्थ निवृत्ति न होनेके कारण जो अनर्थ अर्थात् जो प्रयोजनीय विषय नहीं है। कृष्ण बहिर्मुख व्यक्ति अनावश्यक वस्तुओं को ही प्रयोजन समझकर संसार-चक्रमें भ्रमण

करते रहते हैं। परदुःखदुःखी साधु लोग भगवत् कथाके उपदेशद्वारा उनका वह अनर्थ नाश कर उनके प्रति कृपापरवश होकर परम अर्थ श्रीभगवत्-पादपद्मोंमें उन्मुख कर देते हैं।

श्रुतियोंमें भी कहा गया है—

"धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्
कृताकृतादन्यत्र भूताच्च भव्याच्च।"

अर्थात् वे धर्मसे दूर, अधर्मसे दूर, कार्याकार्यसे दूर एवं भूत तथा भविष्यत्से दूर रहते हैं।

और भी कहा गया है—

"तमेतमात्मनं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसा नाशकेन।"

अर्थात् ब्राह्मण लोग उस आत्माको वेदवाक्य, यज्ञ, दान एवं दुष्कर तपस्याद्वारा जाननेकी इच्छा करते हैं।

इन सभी श्रुतियोंद्वारा भगवत् सन्मुखतामय धर्मोंका कीर्त्तन किया गया है। भगवत्-सन्मुखता किस प्रकार होगा? उसका उत्तर यह है कि भगवत्कृपा ही भगवत्-सन्मुखताका प्रथम एवं प्रधान कारण है। परन्तु वह गौण है। क्योंकि भगवद्बहिर्मुख जीव सभी सांसारिक तापसे तापित होनेपर भी उनके प्रति भगवत्कृपा स्वतन्त्ररूपसे नहीं होती। क्योंकि दूसरेका दुःख अपने चित्तमें उदित होने पर ही कृपारूपी चित्तविकार उदित होता है। किन्तु भगवान् श्रीहरि सर्वदा ही परमानन्दमें मग्न एवं निष्पाप होनेके कारण उनके चित्तमें दुःखका संस्पर्श संभव नहीं है। अतएव कृपाकी उत्पत्ति नहीं होती। अतएव वे जिस कार्यके अनुष्ठान या विपरीत अनुष्ठानमें समर्थ रूपसे विराजमान रहनेपर भी उनसे विमुख व्यक्तिका उनकेद्वारा संसार संतापकी शान्ति नहीं होती। इसलिए आखिर तक साधुओंकी कृपा को ही भगवत्-उन्मुखताके मूलकारणके रूपमें निर्द्धारण किया गया है। यद्यपि साधुओंका चित्त संसार दुःखद्वारा स्पर्शके अयोग्य है तथापि जागे व्यक्ति जिस प्रकार स्वप्नमें देखे गये दुःखका स्मरण करते हैं, उसी प्रकार साधु लोग भी पूर्वसमयमें अनुभूत संसार-दुःखका स्मरण कर संसारियोंके प्रति कृपावान् होते हैं, जिससे उनकी सांसारिक-पीड़ा दूर हो। कुबेर के दोनों पुत्रोंके प्रति देवर्षि नारदजीकी कृपा हुई थी। अतएव इस स्थलमें भी सांसारिक दुःख भगत्कृपाका कारण नहीं है। परन्तु जहाँ "वे श्रीहरि ही इस संसारमें एकमात्र आश्रय हैं", ऐसी दैन्यात्मिका भक्ति हो, वहीं भगवत् कृपा होती है एवं श्रीभगवत्चरणोंमें शरणागतिद्वारा संसार दुःख का दूरीकरण होता है। भगवान्की शक्ति-विशेष भक्तके चित्तमें प्रवेश कर उनके चित्तमें आर्त्तभाव उत्पन्न कराती है। यह शक्तिदीनता के कारण अधिक प्रकट होती है। अतएव जहाँ दीनता देखी जाय वहीं कृपाकी अधिकता देखी जाती है। अतएव साधुओंमें भगवान्की जो कृपा वर्त्तमान है, वही सत्सङ्गद्वारा दूसरे जीवोंमें सञ्चरित होती है। परन्तु स्वयं स्वतंत्र रूपसे नहीं होती।

श्रीमद्भागवतमें देवताओंकी भगवत् स्तुतिमें भी वचन है—

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्
भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः।

भवत्पदांभोरुहनावमत्र ते
निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥
(भा० १०।२।३१)

हे द्युमन् ! अर्थात् स्वप्रकाश, सभी भूतों के प्रति प्रीतियुक्त साधुलोग आपके पादपद्मरूपी नौकाका आश्रय कर दूसरेके द्वारा दुस्तर भयानक संसार समुद्र पार होकर उसी नौका को किनारेपर छोड़कर चले गये हैं। आप सदनुग्रहशील हैं। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि वे स्वयं क्यों नहीं प्रकाश करते ? इस विषय में भक्तके लिए अपेक्षाका कारण क्या है ? उसी के उत्तरमें 'सदनुग्रह' कथन है। वे सज्जनोंके द्वारा ही दूसरेपर अनुग्रह करते हैं। अतएव सज्जन व्यक्ति उनकी मूर्त्तिमान् कृपाके स्वरूप हैं। भगवान्‌की कृपा साधुका आकार धारण कर प्रापंचिक जगत्‌में विचरण करती है।

श्रीरुद्रगीतमें भी कहा गया है --

अथानघाङ्घ्रेस्तव कीर्त्तितीर्थयो-
रन्तर्बहिःस्नानविधूतपाप्मनाम् ।
भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां
स्यात्सङ्गमोऽनुग्रह एष नस्तव ॥
(भा० ४।२४।५८)

हे भगवन् ! आपके श्रीचरणयुगल जीवों का पाप नाश करते हैं। जो व्यक्ति आपके यश रूपी जलमें एवं पादपद्मसे उत्पन्न गंगाके जलमें भीतरसे एवं बाहरसे स्नान कर निष्पाप हुए हैं, वे ही प्राणियोंके प्रति दयाशील रागादिरहित एवं सुशील हुआ करते हैं। हमें ऐसे साधुओंका संग प्राप्त हो। ऐसी संग-प्राप्ति ही आपका अनुग्रह है, ऐसी व्याख्यामें भगवद्-विमुख असज्जनोंके प्रति उनके अनुग्रहका अभाव ही देखा जाता है। वहाँ सज्जन लोगों द्वारा ही उनका अनुग्रह जगतमें अवतरण करता है। सज्जनोंकी स्वेच्छाचारिता ही उनकी संग-प्राप्तिके हेतु रूपसे जानना होगा। अन्य कोई कारण नहीं।

यथा—त एकदा निमेः क्षत्रमुपाजग्मुर्यदृच्छया।

अर्थात् नवयोगेन्द्रगण यदृच्छाक्रमसे या स्वेच्छासे निमि राजाके यज्ञस्थलमें पहुँचे। यदृच्छा अर्थात् स्वैरता। साधुओंको परमेश्वर द्वारा प्रेरण-कार्य साधुओंकी इच्छानुसार ही जानना होगा। यह बात 'स्वेच्छामयस्य' (इच्छामयकी) एवं 'अहं भक्तपराधीनः' (मैं भक्तका अधीन हूँ) इत्यादि श्लोकोंमें वर्णन की गई है।

राजा चित्रकेतुके प्रति अङ्गिरा ऋषिकी भी कृपा ऐसी ही है—

तस्यैकदा तु भुवनमंगिरा भगवानृषिः ।
लोकानुनुचरन्नेतानुपागच्छद्यदृच्छया ॥
(भा० ६।१४।१४)

एकबार भक्तश्रेष्ठ अङ्गिरा ऋषि दैवक्रम से नाना लोक भ्रमण करते करते उनके भवन में आये। यहाँ भी अंगिराका स्वेच्छा भ्रमण प्रसंगमें ही चित्रकेतुको भगवत्सन्मुखता प्राप्त हुई थी एवं कालान्तरमें वह विशेषरूपसे प्रकट हुई थी। यही जानना होगा। चित्रकेतु मरे पुत्रके लिए शोकमग्न होकर विलाप करते रहने पर उसके प्रति अनुग्रह करनेके लिए देवर्षि नारदजीके साथ अंगिराजी अपनी इच्छानुसार आकर उससे कहा था—

ब्रह्मण्यो भगवद्भक्तो नावसीदितुमर्हति ।
(भा० ६।१५।१९)

तुम ब्रह्मण्य एवं भगवद्भक्त हो, अतएव तुम्हारे लिए इस प्रकार शोकके अधीन हो जाना उचित नहीं है।

साधुओंकी कृपा जीवोंकी दुरवस्था देखकर ही उत्पन्न होती है। इस विषयमें जीवोंकी उपासनाकी अपेक्षा नहीं है। इसी प्रकार नलकूबर एवं मणिग्रीवकी पतित दशा देखकर उनके प्रति देवर्षि नारदजीकी कृपा हुई थी। अतएव भागवतमें (११।२।६) कहा गया है—

भजन्ति ये यथा देवान् देवा अपि तथैव तान् ।
छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः ॥

जो व्यक्ति देवताओंका जिस प्रकारसे भजन करते हैं, कर्मसहायकारी देवता, जो छायातुल्य हैं वे भी भजनकारीको वैसा ही फल प्रदान करते हैं। किन्तु साधुलोग वैसे नहीं हैं, वे लोग दीनवत्सल हैं। सत्संग ही जीवोंके परम संस्कारका कारण है। उसके लिए दूसरे कोई संस्काररूपी कारणकी अपेक्षा नहीं है। क्योंकि भागवतमें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवामृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥

पवित्र जलमय स्थान सभी ही यथार्थ तीर्थ नहीं हैं एवं मृत्तिका (मिट्टी) एवं शिलामयी मूर्त्तियाँ सभी ही वस्तुतः (यथार्थ) देवता नहीं हैं। क्योंकि वे दीर्घकाल सेवा करनेके पश्चात् पवित्र करते हैं, किन्तु साधुलोग दर्शनमात्रसे ही सभीको पवित्र कर देते हैं। वे सभी तीर्थ एवं सभी देवता मूर्त्ति गौणत्वके कारण आदर प्राप्त नहीं हुए। क्योंकि वे दीर्घकालमें पवित्र करते हैं। भगवत् सन्मुखतामें सत्संग ही कारण रूपसे कहा गया है। व्यतिरेक रूपसे यही कहा जा रहा है—

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेक-
मनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम् ।
प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं
यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥
रहूगणैतत् तपसा न याति
न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा ।
नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यै-
र्विना महत्पादरजोऽभिषेकम् ॥

हे रहूगण! विशुद्ध, परमार्थभूत, एक (अद्वितीय) बाहर एवं भीतरसे रहित, ब्रह्म (अपरिच्छिन्न या पूर्ण), प्रत्यक् (साक्षात् सर्वत्र विराजमान) एवं निर्विकार ज्ञान ही सत्य है एवं वही 'भगवान्' शब्दद्वारा उद्दिष्ट है। बुद्धिमान् व्यक्ति इसी ज्ञानको वासुदेव कहते हैं। यह ज्ञान महाजनों या महाभागवतोंके चरणरजके अभिषेकके बिना दूसरे किसी वैदिक कर्म, तपस्या, निर्वपण (सन्यास), गृहस्थ धर्म, ब्रह्मचर्य अथवा जल, अग्नि, सूर्य आदिकी उपासना द्वारा प्राप्त नहीं होता।

व्यवहारिक सत्यताका निषेध करनेके लिए कहते हैं—परमार्थ ही सत्य है। इन्द्रिय-वृत्तिद्वारा उत्पन्न साधारण ज्ञानका निषेध (मन) करनेके लिए यहाँ 'ज्ञान' पदार्थके छः

विशेषण क्रमशः बतलाये गये हैं। यह 'ज्ञान' ही विशुद्ध है, परन्तु इन्द्रिय-वृत्तियोंसे उत्पन्न ज्ञान अविशुद्ध है। यह 'ज्ञान' एक है, किन्तु इन्द्रियोंका ज्ञान नानारूपयुक्त है। यह 'ज्ञान' अनंतर एवं अबहिः अर्थात् भीतर-बाहर रहित है, किन्तु विषय ज्ञान इसका विपरीत है। यह 'ज्ञान' ब्रह्म अर्थात् परिपूर्ण है, किन्तु लौकिक ज्ञान सीमित एवं अपूर्ण है। यह 'ज्ञान' प्रत्यक् या यथार्थ है, किन्तु लौकिक ज्ञान विषयाकार है। 'ज्ञान' प्रशान्त अर्थात् निर्विकार है एवं वह लौकिक ज्ञान विकारयुक्त है। ऐसे 'ज्ञान' को ही सत्य कहा गया है। वह 'ज्ञान' किस प्रकारका है? उसका उत्तर है—वह भगवत् शब्दद्वारा कहा गया है अर्थात् ऐश्वर्य आदि छः अलौकिक गुणयुक्त होनेके कारण इस 'ज्ञान' को पण्डित व्यक्ति 'वासुदेव' कहते हैं। महाभागवतोंकी सेवाके बिना वह नहीं मिलता। अतएव इस ज्ञान-पदार्थको तपस्या द्वारा, इज्या या वैदिक कर्मोंद्वारा, निर्वपण या अन्नादिके संविभागद्वारा, गृहस्थधर्म या उसके निमित्त परोपकारादिद्वारा, 'छन्द' अर्थात् वेदाभ्यासद्वारा अथवा जलाग्निसूर्य आदिकी उपासना द्वारा भी पाया नहीं जाता। यहाँ ब्रह्मत्व आदि विशेषणद्वारा जीव स्वरूप सुषुप्ता आदिसे मुक्त ज्ञान तक खण्डन किया गया है।

भगवत्-सन्मुखता प्राप्त व्यक्ति ही 'सत्' कहलाने योग्य हैं। जिनको ऐसा सत्-संग प्राप्त होगा, वे ही ऐसी सन्मुखता प्राप्त करेंगे, यह कहनेके लिए उनका लक्षण या चिह्न कह रहे हैं—

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्ते-
स्तमोद्वारं योषितां संगिसंगम्।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता
विमन्यवः सुहृदः साधवो ये॥
ये वा मयीशे कृतसौहृदर्था
जनेषु देहम्भरवार्त्तिकेषु।
गृहेषु जायात्मजरातिमत्सु
न प्रीतियुक्ता यावदर्थाश्च लोके॥
(भा० ५।५।२-३)

महत् सेवाको ही विमुक्तिका द्वार या उपाय स्वरूप एवं योषित् एवं योषित्-संगी (स्त्री या विषयी एवं उनके सङ्गमें आसक्त व्यक्ति) का संग ही तमोद्वार या नरकको ले जानेवाला है।

जो साधु व्यक्ति समचित्त, निर्विकार, क्रोधशून्य एवं सभीके सुहृद हैं, वे ही महत् हैं या जो व्यक्ति मुझमें सौहार्द या बन्धुत्व उसको ही परम पुरुषार्थ समझते हैं एवं देहरक्षक अन्नपानादिमें आसक्त पुरुषोंके प्रति एवं पत्नी पुत्रबन्धु आदियुक्त गृहके प्रति प्रीति नहीं रखते एवं जीवन रक्षाके उपयोगी धनमें अधिक स्पृहा नहीं रखते, वे ही 'महत्' हैं।

जो व्यक्ति समचित्त अर्थात् निर्विशेष ब्रह्मनिष्ठ हैं, वे महत्, प्रशान्त आदि कहकर उनके स्वभावको कह रहे हैं। 'ये वा मयीशे' आदि श्लोकोंद्वारा महत् विशेषकी बात कह रहे हैं। इस द्वितीय पक्षमें कहे गये महत् व्यक्ति ही श्रेष्ठ हैं।

(क्रमशः)

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज